International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 87-93

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 87-93
© 2015 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-03-2015
Accepted: 17-04-2015

डॉ. विवेक निराला
रीडर, हिन्दी विभाग, भवन्स मेहता महाविद्यालय, भरवारी कौशांबी, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. विवेक निराला
रीडर, हिन्दी विभाग, भवन्स मेहता महाविद्यालय, भरवारी कौशांबी, उत्तर प्रदेश, भारत

आधुनिक हिन्दी–कविता में तुलसी की उपस्थिति

डॉ. विवेक निराला

प्रस्तावना

हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय, असुविधाजनक और विवादास्पद कवि हैं तुलसीदास। किसी कवि की कविता जब लोकजीवन में उतर कर अपनी अर्थवत्ता ग्रहण करने लगे तो उस कवि की अमरता असंदिग्ध हो जाती है। तुलसीदास की कविता की व्याप्ति ऐसी ही है। तुलसी भारत की पहचान के साथ जुड़े हुए हैं। तुलसीदास की 'रामचरितमानस' का पहला अंग्रेजी अनुवाद अमरीकी पादरी फादर एटकिंस ने किया और पहला रूसी अनुवाद प्रसिद्ध कम्युनिस्ट लेखक वारान्निकोव ने। स्पष्ट है कि तुलसीदास की कविता में इतनी शक्ति है कि उसके चुम्बकीय आकर्षण से एक धार्मिक व्यक्ति और एक नास्तिक कम्युनिस्ट क्रांतिकारी–दोनों ही नहीं बच पाते। तुलसीदास धर्म की एक नयी परिभाषा रचते हैं– और वह है परहित। लोकहित की यह कसौटी पहली बार तुलसीदास हमें देते हैं और इस कसौटी पर राजनीति से लेकर साहित्य तक सबका परीक्षण किया जा सकता है। उनके यहाँ भक्ति के पारलौकिक और वैयक्तिक मुक्ति के ढाँचे में ही नितान्त लौकिकता और इस लोक का यथार्थ भी मौजूद है। पारलौकिक शक्तियों के प्रतिरोध और मुक्तिबोध के हवाले से कहें तो–'जो कुछ भी है, उससे बेहतर चाहिए' की दुर्दमनीय आकांक्षा से ही भक्ति और कविता दोनों जन्म लेते हैं। भक्त अपना ईश्वर चुनते हैं, कवि अपने ईश्वर को गढ़ते हैं। इसीलिए सबके अपने–अपने राम हैं–कबीर के अलग, तुलसी के अलग और निराला के अलग।

जीवन श्वेत–श्याम और अँधेरे–उजाले के युग्म से ही चलता है। हर समय के अपने अँधेरे होते हैं, जिनसे बाहर आने और उजाले की ओर जाने के लिए हर युग के अपने प्रयत्न होते हैं। इसी बीच कोई चिन्तक–विचारक अथवा कोई कवि–लेखक खुद को जलाकर हमारा मार्ग प्रशस्त करता है–जैसे निराला कहते हैं–'केवल जलती मशाल'। इसी रौशनी में मनुष्य अपने संकल्प और साहस से अपने समय के अँधेरों को पार करता जाता है। तुलसीदास की कविता की ही शक्ति थी कि औपनिवेशिक काल में भारत के गरीब मजदूर जब गिरमिटिया बनकर विभिन्न देशों में गये तो उनके साथ तुलसी की कविता भी थी। इसी के सहारे उन्होंने अपने अँधेरे को पार किया और उजाले के गीत गाये। अपने श्रम, संकल्प और साहस से उन्होंने अपनी विजय का इतिहास रचा।

औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए महात्मा गाँधी ने भी तुलसीदास से ही प्रेरणा ली और साम्राज्यवादी–''रथी रावण–सेना' के बरअक्स 'विरथ और निहत्थी भारतीय आम जनता को खड़ा किया। उन्होंने स्वराज के लिए तुलसी के रामराज, का ही मॉडल स्वीकार किया। तुलसीदास की कविता की शक्ति और उसके सामर्थ्य पर विचार करते हुए हमें अवध के किसान आन्दोलन का भी स्मरण करना होगा। सन् 1920 के आसपास चले इस आन्दोलन ने तुलसीदास के रामचरितमानस का मानो एक नया ही टेक्स्ट तैयार कर दिया। इस आन्दोलन ने रामचरितमानस, को अपने समय में अपनी ही तरह से डी–कंस्ट्रक्ट किया और एक जन–आंदोलनकी पृष्ठभूमि सामने रख दी। बाबा रामचन्द्र को जन–क्रान्ति का यह दर्शन न तो मार्क्स से मिला था और न ही महात्मा गाँधी से। उन्हें तो जिस तुलसीदास से यह दर्शन मिला उस तुलसीदास को अति–क्रान्तिकारियों ने प्रगति–विरोधी, प्रतिक्रियावादी, साम्प्रदायिकता के जनक और न जाने क्या–क्या कह डाला! यहाँ हमें ध्यान रखना होगा कि एक महात्मा–एक सन्त–एक जनआन्दोलनकर्ता कैसे तुलसीदास को याद करता है, कैसे अपने लिए टूल्स ढूंढ़ लेता है। तुलसी की विनम्रता, उनकी करुणा, उनके स्वाभिमान, उनके मोहभंग, उनके यूटोपिया और प्रतिरोध का कैसे हमारे समय में इस्तेमाल किया जाय, यह हम इनसे सीख सकते हैं। तुलसीदास भक्तिकालीन कवि हैं, किन्तु तुलसी को बीसवीं शताब्दी में गाँधी और बाबा रामचन्द्र आधुनिक बना देते हैं। जब जनान्दोलनों ने तुलसीदास को आधुनिक बना दिया तो आधुनिक हिन्दी कविता को भी तुलसीदास तमाम सम्भावनाओं से परिपूर्ण लगे। आधुनिक हिन्दी कविता ने तुलसीदास से बहुत कुछ ग्रहण भी किया और कई बार तो तुलसी को अपने समकालीन ला खड़ा किया।

यह तुलसीदास का पुनराविष्कार था। तुलसी अब महज भक्तिकालीन कवि न रहकर आधुनिक कवि हो गए जैसे अस्मितावादी विमर्शों के दौर में कबीर का पुनर्पाठ हुआ और कबीर हमारे समकालीन हो गए। आधुनिक हिन्दी कवि तुलसीदास से टूल्स–टेक्स्ट–टेक्नीक जो भी लेता है, वह दरअस्ल तुलसीदास की परम्परा को आगे बढ़ा रहा होता है। यही तुलसी की उपस्थिति है।

आधुनिकता की समझ के लिए परंपरा का ज्ञान होना आवश्यक है। परंपरा का सिर्फ ज्ञान रखना परंपरावादी होना नहीं है। आधुनिकता की संपूर्णता को परंपरा से अलग रख कर देखना शायद मुमकिन भी नहीं। हाँ, समय–सापेक्ष उसके मूल्यांकन के अभाव में अगर कोई परंपरा जड़ हो जाए तो वह अपने किसी भी रूप में परंपरा नहीं रहती, प्रथा या रूढ़ि बन जाती है। काव्य–परम्परा में ऐतिहासिक चेतना के सहारे किसी कृति के कालजीवी और कालजयी होने के फर्क को समझा जा सकता है। जहाँ कालजीवी रचना किसी समय विशेष में गंभीर योगदान देते हुए प्रासंगिक होती है, वहीं कालजयी कृति अपने युग से आगे दूसरे युग में अतिक्रमण करती है। फिर भी साहित्य के लिए दोनों का अपना महत्त्व है। आधुनिक संदर्भों में भक्तिकाल का काव्य और कवि साहित्य की परम्परा में हमें आधुनिक लगते हैं। परंपरा से हमें समूचा अतीत नहीं प्राप्त होता, बल्कि उसका निरंतर परिवर्तनशील या परिवर्तित रूप प्राप्त होता है, जिसके आधार पर हम आगे के जीवन और साहित्य को देखते हैं। परिवर्तन और निरंतरता परंपरा को मांजते हैं, जिससे परंपरा अपनी अर्थवत्ता को बनाए रखती है और अपने वास्तविक संदर्भों में आधुनिकता के गुणों को समाहित कर आगे बढ़ती है। किसी भी परंपरा की तार्किक प्रवृत्ति उसे जीवंत बनाए रखने में मदद करती है। अन्यथा परंपरा को सूख कर जड़ होने में समय नहीं लगता। अपने समय में आलोचना जिन मूल्यों का सृजन करती है, परंपरा उन मूल्यों की वाहक बनती है और पीढ़ी दर पीढ़ी मूल्यों को हस्तांतरित करती चलती है। किसी परंपरा की नई व्याख्या करना भी दरअसल सृजन करना है।

साहित्य लेखन हो या आलोचना कर्म, किसी भी तरह के वैचारिक लेखन में अगर परंपरा से ''खाद–पानी' लिया जाता है तो आगे की रचनात्मक फसल भी उतनी ही अच्छी होती है। यों अपने अतीत को छूते हुए आज से गुजरना सहृदय पाठक के लिए भी अनूठा अनुभव होता है। आखिरकार परंपरा एक गतिशील प्रक्रिया है जो सतत मूल्यांकन के चलते कभी भी आधुनिकता की विरोधी नहीं होकर उसकी पूरक होती है। इलियट ने अपने निबंध परंपरा और वैयक्तिक प्रज्ञा' में स्वीकार किया और कहा–परंपरा के अभाव में कवि छाया मात्र है और उसका कोई अस्तित्व नहीं होता।'' परंपरा अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण वस्तु है, परंपरा को छोड़ देने से हम वर्तमान को भी छोड़ बैठेंगे। इलियट यह मानता है कि परंपरा उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं होती। यह अर्जित की जाती है। वस्तुतः इलियट के लिए परंपरा एक अविच्छिन्न प्रवाह है जो अतीत के सांस्कृतिक–साहित्यिक दाय के उत्तमांश से वर्तमान को समृद्ध करता है। यह अतीत की जीवंत शक्ति है जिससे वर्तमान का निर्माण होता है और भविष्य का अंकुर फूटता है। परंपरा के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए इलियट ने इस बात पर बल दिया कि कवियों का मूल्यांकन परंपरा की सापेक्षता में किया जाय। उसके अनुसार कोई भी रचनाकार स्वयं में महत्त्वपूर्ण नहीं होता। वह अपने पूर्ववर्ती कवियों की तुलना में ही अपनी महत्ता सिद्ध कर सकता है।

परंपरा का संबंध संस्कृति से है। संस्कृति में किसी जाति या समुदाय के जीवन, कला, दर्शन–साहित्य आदि के उत्कृष्ट अंश सन्निविष्ट रहते हैं। संस्कृति में एक प्रकार का नैरन्तर्य रहता हैं' उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नपूर्वक अतीत को जानना जरूरी है। परंपरा बोध से साहित्यकार को यह भी ज्ञात हो जाता है कि वह जो कुछ कर रहा है, उसका मूल्य क्या है। इस प्रकार परंपरा ज्ञान द्वारा साहित्यकार को कर्तव्यबोध और मूल्यों का साहित्यिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

आधुनिक हिन्दी कविता की बात करें तो हम सहज ही देख सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी काव्य–धारा विवेक–सम्मत ढंग सेतुलसी की काव्य–परम्परा का विस्तार कर रही है। हिन्दी आलोचना जैसे तुलसीदास से लड़ते–भिड़ते अपना विकास पाती है, ठीक वैसे ही आधुनिक हिन्दी कविता की वेगवती धारा पर्वताकार अचल तुलसीदास से टकराते, स्पर्श करते और उसी से अपना रास्ता बनाते हुए प्रवाहित हो रही है। भारतेन्दु से आधुनिक हिन्दी कविता– धारा का आरम्भ होता है। औपनिवेशिक काल में भारतेन्दु अपनी पूर्ववर्ती काव्य–रूढ़ियों और पूर्ववर्ती काव्य–भाषा के साथ ही काव्य की वस्तु को सामान्य जीवन के साथ जोड़ देते हैं। अपने समय की चुनौतियों और यथार्थ के साथ अपने सुलूक से भारतेन्दु युग के कवियों ने आधुनिक हिन्दी कविता के भविष्य की रूपरेखा तय कर दी थी। पूर्ववर्ती काव्य–परम्परा से प्रभाव ग्रहण करने में भी उन्होंने कविता की रीतिकालीन परम्परा को छोड़ कर भक्तिकालीन काव्य–परम्परा से सीधे तौर पर प्रभाव ग्रहण किया। भारतेन्दु ने तुलसीदास की लोकमंगल–लोकहित की भावना को फिर से कविता में प्रतिष्ठित किया और काव्य को साधारण की अभिव्यक्ति के केन्द्र में ला खड़ा किया। हर समय की कविता में उस पूरे युग के अपने अंतर्विरोध सम्मिलित रहते ही हैं इसलिए, भक्तिकाल और तुलसीदास की कविता में जहाँ मध्यकाल और मध्यकालीन समाज के अपने अंतर्विरोध हैं, वहीं भारतेन्दु युग में आकार ले रही आधुनिक हिन्दी कविता में उस समय के समाज के अंतर्विरोध गुँथे हुए हैं।

तुलसीदास का काव्य कृषक–जीवन का काव्य भी है। तुलसीदास की अपनी चिंताएँ हैं जो भारतेन्दु युग में विकास पाती हैं। कलिकाल में जिस दुर्दशा का चित्रण तुलसी ने अपने समय में किया था, लगता है भारत में वह कलिकाल' औपनिवेशिक शासन में पुनः सत्य हो रहा है। कलिकाल तुलसी का ऐसा रूपक है जिसमें आम आदमी की दुर्दशा के भयावह चित्र हैं। दुर्दशा के इस भयावह यथार्थ से ही भारतेन्दु भारत–दुर्दशा' की रचना करते हैं। हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई' का चीत्कार करने वाले भारतेन्दु युग के कवि राधाचरणदास तुलसीदास की परम्परा में विनय के पद रचते हैं–

'प्रभु हो! पुनि भूतल अवतरिये।
अपुने या प्यारे भारत कौ, पुनि दुःख दरिद्र हरिये।।''

भारतेन्दु युग के कवियों का वस्तु और शिल्प इस परम्परा से गहरे प्रभावित है। तुलसीदास जहाँ लिखते हैं– 'हम चाकर रघुबीर के' वहीं तुलसी के इतने वर्षों बाद भारतेन्दु भी लगभग वैसे ही लिखते हैं–

''हम चाकर राधारानी के।
ठाकुर श्री नन्दनन्दन के, वृषभानी लले ठकुरानी के।।''

भारतेन्दु के समय में भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम हुआ था और उसका बर्बर दमन भी। मगर, स्वतन्त्रता की आकांक्षा और बलवती हो गयी थी। द्विवेदी–युग तक आते–आते स्वतन्त्रता–संघर्ष शक्ति–सम्पन्न हो चुका था। इस युग की चेतना ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतिरोध के लिए संकल्पबद्ध हुई। नयी संवेदना अब नयी भाषा में अभिव्यक्त होने की मांग कर रही थी अतः सामन्ती रूढ़ियों वाली ब्रजभाषा को छोड़ कर खड़ी बोली नयी काव्य–भाषा बनी। तुलसी के ही शब्दों में कहें– 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' के अनुरूप पराधीनता के प्रति विद्रोह और राष्ट्र–प्रेम इस युग की केन्द्रीय चेतना थी।

द्विवेदी युग के कवि रामनरेश त्रिपाठी–'पथिक' में जैसे तुलसी की ही पंक्तियों को खड़ी बोली में व्यक्त करते हैं–'अपना शासन आप करो तुम, यही शान्ति है, सुख है।/पराधीनता से बढ़ जग में नहीं

दूसरा दुःख है।' यह वही समय है जब तुलसीदास की–कत बिध सृजी नारि जग माहीं' का सवाल द्विवेदी–युग का सवाल बन जाता है और स्त्री के प्रति सम्मान की एक ऐसी भावना का उभार होता है और 'साकेत' तथा यशोधरा' जैसे महाकाव्य–ग्रन्थों की रचना सम्भव होती है। द्विवेदी–युग के कवि ने देखा कि नये युग की नयी आवश्यकताएं हैं जिनके लिए नये युग की व्यवस्था किसी अपरिचित आधार पर न होकर गत युग की अच्छाइयों की सुदृढ़ नींव पर खड़ी हो। चूँकि स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में गाँधी जी स्वयं स्वराज के लिए तुलसीदास के रामराज का मॉडल स्वीकार कर रहे थे अतः द्विवेदी–युग के कवियों के समक्ष गाँधी जी का वही यूटोपिया था, इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त को उनके समय में रामराज्य की स्थापना नये युग की नयी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुकूल लगती है। वे कहते हैं–'आज के योग्य एक अविभाज्य/विश्व को मिले राम का राज्य।' (विश्ववेदना पृष्ठ सं–5) द्विवेदी युगीन कविता जब अपनी उपदेशात्मक पद्धति और इतिवृत्तात्मकता में रूढ़ हो गयी तो उसके अन्तिम चरण से ही एक नयी काव्यधारा का उन्मेष हुआ जिसे हिन्दी कविता के इतिहास में छायावाद के नाम से जाना गया। छायावाद हिन्दी–कविता का एक ऐसा युग था जिसका गहरा संबंध भाव–जगत से था, इसीलिए द्विवेदी युग की स्थूलता के विरुद्ध यहाँ सूक्ष्मता का प्राधान्य था। छायावाद औपनिवेशिक सत्ता का विरोध करते हुए व्यक्ति को रचना के केन्द्र में लाता है। छायावादी कवि अपना एक प्रतिसंसार रचते हुए मनोराज्य की स्थापना करता है। कटु–तिक्त यथार्थ के बरअक्स छायावादी कवि अपने प्रतिसंसार के लिए एक यूटोपिया भी रचता चलता है। तुलसीदास ने जैसे अपने समय में रामराज्य की कल्पना की थी, जयशंकर प्रसाद ने आनन्दलोक की कल्पना की और निराला ने अलग–अलग फैंटेसी का प्रयोग किया।

प्रसाद जी का यूटोपिया तो चित्राधार' में संकलित प्रेमराज्य' से प्रारम्भ होता है, फिर प्रेमपथिक' में एक आनन्द नगर' की कल्पना कवि करता है। प्रसाद जी कामना' में विवेक–राज्य' स्थापित कर डालते हैं और अपनी अन्तिम काव्यकृति कामायनी' तक आते–आते पुनः एक आनन्दलोक' प्रतिष्ठित कर देते हैं। उनके प्रेम, विवेक और आनन्द के ये तीनों कोण क्रमशः कामायनी के श्रद्धा, इड़ा और मनु का ऐसा समबाहु त्रिभुज बनाते हैं जो मनुष्यता के इतिहास और उसके कथालोक का निर्माण करता है। प्रकाशन संस्थान द्वारा 2014 में प्रकाशित तथा ओमप्रकाश सिंह द्वारा सम्पादित प्रसाद–ग्रन्थावली के प्रथम खण्ड में महाकवि तुलसीदास' शीर्षक कविता मुझे मिली जिसमें प्रसाद जी लिखते हैं–

''अखिल विश्व में रमा हुआ है राम हमारा
सकल चराचर जिसका क्रीड़ापूर्ण पसारा
इस शुभ सत्ता को जिसने अनुभूत किया था
मानवता को सदय राम का रूप दिया था।।
न्याय–निरूपण किया रत्न से मूल्य निकाला
अंधकार–भव–बीच नाम–मणि दीपक बाला।
दीन रहा, पर चिंतामणि–वितरण करता था
भक्ति–सुधा से जो संताप हरण करता था
प्रभु का निर्भय सेवक था, स्वामी था अपना
जाग चुका था, जग था जिसके आगे सपना।।
प्रबल प्रचारक था जो उस प्रभु की प्रभुता का
अनुभव था सम्पूर्ण जिसे, उनकी विभुता का
राम छोड़ कर और की, जिसने कभी न आस की
'राम–चरित–मानस' कमल जय हो तुलसीदास की।।''

प्रसाद जी अपनी कविता में लिखते हैं– जाग चुका था, जग था जिसके आगे सपना' और निराला अपनी तुलसीदास' कविता में लिखते हैं–'जागो, जागो आया प्रभात/बीती वह, बीती अन्ध रात/झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल''– इन दोनो कवियों की कविता पंक्तियों को देखकर लगता है कि अपने समय में तुलसी का जागरण जैसे नवजागरण के दौर में समूचे भारत के जागरण का एक रूपक है। छायावादी काव्य की एक परिणति कामायनी है, तो दूसरी परिणति निश्चय ही तुलसीदास' है। निराला ने तुलसीदास' में वस्तु–योजना के लिए ऐतिहासिक आधार को लिया है। तुलसीदास का आरंभ भारतीय संस्कृति के संध्याकाल से होता है।

'भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे–समस्तूर्य दिड्मंडल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
हे उर्मिलजल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।''

तुलसीदास निराला के प्रिय कवि थे। उन्होंने तुलसीदास को काव्य–नायक बनाया और उन पर कविता लिखी। तुलसीदास' निराला की प्रसिद्ध कविताओं में से एक है। निराला की यथार्थ चेतना कबीर के निकट है मगर, निराला लिखते तुलसी पर हैं।

तुलसी के काव्य–मूल्य से निराला परिचित थे। हिंदी जाति में तुलसी के काव्य का प्रभाव, लोकमानस की सफल अभिव्यंजना, तुलसी की सर्जनात्मक प्रतिभा एवं राम–काव्य के प्रति आकर्षण के कारण निराला के प्रिय कवि तुलसी ही थे। निराला ने तुलसी को अपना आदर्श माना है, आराध्य के रूप में स्वीकार किया है। अपने समय के अज्ञानांधकार से समाज को मुक्त करने का प्रयास तुलसी ने किया था। यह प्रयास निराला का भी था। अज्ञान रूपी अंधकार को निर्मूल करने के उद्देश्य से निराला ने कहा है–

''करना होगा यह तिमिर पार,
देखना सत्य का मिहिर–द्वार,
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय।
लड़ना विरोध के द्वंद्व–समर,
रह सत्य मार्ग पर स्थिर निर्भर,
जाना भिन्न भी देह निज पर निःसंशय।।''

आराध्य से शुरू कर तुलसीदास' के तुलसी को निराला अपना समकालीन बना देते हैं। निराला के तुलसीदास' में आज की दलित–चिन्ता भी है और विदेशी आक्रमण से जातीय संस्कृति के 'शीतलच्छाय' हो जाने की चिन्ता भी। वर्ष 1937 में 'विश्वभारती क्वार्टरली' में ''मॉडर्न (पोस्टवार) हिन्दी पोएट्री' लेख में लिख चुके थे– ''निल निसी बोनम– ऐंड ऐज ए लिटररी फोर्स, ऐट ऐनी रेट, निराला इज आलरेडी डेड।"लेकिन तुलसीदास' पढ़ने के बाद अज्ञेय का निराला के काव्य के बारे में विचार बदला। निराला जी के बारे में लिखे गये संस्मरण वसंत का अग्रदूत' में अज्ञेय स्वीकारते हैं – विश्वभारती' पत्रिका में एक लंबा लेख छपा था। आज यह मानने में भी मुझे कोई संकोच नहीं है कि उसमें निराला के साथ घोर अन्याय किया गया था।"इसी संस्मरण में आगे चलकर अज्ञेय जी लिखते हैं–''निरालाजी के काव्य के विषय में मेरा मन पूरी तरह बदल चुका था। वह परिवर्तन कुछ नाटकीय ढंग से ही हुआ। शायद कुछ पाठकों के लिए यह भी आश्चर्य की बात होगी कि वह उनकी जुही की कली' अथवा राम की शक्तिपूजा' पढ़कर नहीं हुआ, उनका तुलसीदास'' पढ़कर हुआ। अब भी उस अनुभव को याद करता हूँ तो मानो एक गहराई में खो जाता हूँ। अब भी राम की शक्तिपूजा' या निराला के अनेक गीत बार–बार पढ़ता हूँ, लेकिन तुलसीदास' जब–जब पढ़ने बैठता हूँ तो इतना ही नहीं कि एक नया संसार मेरे सामने खुलता है, उससे भी विलक्षण बात यह है कि वह संसार मानो एक ऐतिहासिक अनुक्रम में घटित होता हुआ दीखता है।

स्वतन्त्रता के साथ विभाजन और साम्प्रदायिकता का जो भयंकर रुप अपने समय में निराला ने देखा था और इसकी सच्चाइयों से सिहर कर शायद वे भक्ति–गीतों के उस शिल्प की ओर मुड़ गये

थे जो अकबर के शासन–काल की सच्चाई बयान करने के लिए तुलसीदास ने चुना था। निराला के ये विनय–गीत 'आत्म–चीत्कार' की शक्ल में सामूहिक 'जन–चीत्कार' की अभिव्यक्ति हैं। इन गीतों के बारे में श्री दूधनाथ सिंह कहते हैं–''दरअसल निराला की ये प्रार्थनाएं मध्यकालीन भक्ति–पदों से अलग हैं। उनका वैविध्य देवताओं का नहीं अन्तर्वस्तुओं का है।'' यही फर्क इन कविताओं को आधुनिक बनाता है क्योंकि वे ट्रैजिक हैं, साधनापरक नहीं। वे आधुनिक मनुष्य के अन्तरमन को बेधती हुयी दुःख–गाथाएं हैं, जिनके पीछे कोई निर्वाण नहीं, कोई मोक्ष नहीं। स्वाधीन भारत में नेहरू का युग स्वर्ण–युग माना जाता है, लेकिन निराला के लिए यह नरक–यात्रा का युग है। इस दौर की उनकी कविताओं में बार–बार 'अंध कारा' और 'बन्दीगृह' की आवृत्ति होती है। यह वैसे ही अपने समय के सच की अभिव्यक्ति थी जैसे अपने समय के स्वर्ण–युग अकबर के शासन–काल का एक सच तुलसीदास अपनी विनय–पत्रिका मे व्यक्त कर रहे थे।

कविता की अन्तर्वस्तु और रचनाविधान में परिवर्तन कर रहस्यवाद और रूमानी वृत्ति के परित्याग के साथ छायावाद के अन्त की पृष्ठभूमि तैयार हुयी और प्रगतिवाद का पथ प्रशस्त हुआ। त्रिलोचन इस दौर के प्रमुख कवि हैं। त्रिलोचन अपना काव्य गुरु तुलसीदास को स्वीकार करते हैं। काव्य–गुरु बनाने का अर्थ अनुकरण करना नहीं होता। तुलसी से त्रिलोचन ने क्या सीखा? इसका सीधा सा उत्तर है–कविता की भाषा। कविता की भाषा का स्वरूप और उसकी संरचनात्मक प्रक्रिया। यह त्रिलोचन स्वयं हमें बताते हैं। वे तो तुलसी को काव्य–गुरु मानते हुए हमें यह भी स्पष्ट कर देते हैं–

'तुलसी बाबा भाषा मैंने तुमसे सीखी
मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो।
कह सकते थे तुम सब कड़वी मीठी तीखी
प्रखर काल की धारा में तुम जमे हुए हो।''

तुलसीदास जैसा कवि हिन्दी में दूसरा नहीं हुआ जिसने अपने समय में नई काव्य–भाषा गढ़ी। तुलसी हमेशा जैसे त्रिलोचन के सामने आकर खड़े हो जाते हैं। तुलसीदास से भाषा सीख कर त्रिलोचन नये आत्मविश्वास और तेजस्विता के साथ हिन्दी के साहित्य जगत में प्रकट होते हैं और उनकी यह पंक्तियाँ प्रगतिशील कविता का घोषणा–पत्र बन जाती हैं–

''लड़ता हुआ समाज, नयी आशा अभिलाषा
नये चित्र के साथ नयी देता हूँ भाषा।''

त्रिलोचन के लिए तुलसीदास आदर्श कवि हैं। वे तुलसी से इतने प्रभावित हैं कि वे भले ही निराला की तुलसीदास से प्रतिस्पर्धा के किस्से सुनाते फिरें मगर, अपनी कविता को तुलसी के समतुल्य रखने–परखने की प्रस्तावना करते हैं। आत्मालोचन की मुद्रा में त्रिलोचन स्वयं ही कहते हैं– तुलसी और त्रिलोचन में जो अन्तर झलके

वे कालान्तर के कारण हैं। देश वही है,
लेकिन तुलसी ने जब–जब जो बात कही है,
उसे समझना होगा सन्दर्भों में कल के।''

राम के मिथक का गहरा सम्बन्ध कृषि–सभ्यता से है। राम का अर्थ खेत भी होता है, सीता हल से पड़ी लीक को भी कहते हैं। जनक प्रजापति है। रावण रुलाने वाला अर्थात सूखा है। मेघनाथ और इन्द्रजीत वर्षा से ही सम्बंधित नाम हैं। अहल्या का अर्थ–जो भूमि हल चलाने योग्य नहीं है। इंद्र के अतिचार से ही यह होता है। कहने का आशय यह कि समूची रामकथा कृषि सभ्यता की अपनी कथा है। राम–कथा का देश–कालानुरूप विस्तार हुआ है, ऐसे में किसान–मजदूर अथवा श्रमजीवी चेतना के कवि चाहे नागार्जुन हों, त्रिलोचन हों, चाहे केदारनाथ अग्रवाल सब में तुलसी की उपस्थिति बनी हुई है। नागार्जुन तो यहाँ तक कह देते हैं–'तुलसी बाबा साथ रहइं त पार करब कविता बइतरनी।'' नागार्जुन का संघर्ष यह था कि उनकी कविता साधारण, अनपढ़ और पीड़ित जनता की अपनी कविता बन सके। उन जैसे संस्कृत के पण्डित काव्य–मर्मज्ञ और प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिए यह कितना दुःसाध्य था, इसका सहज अन्दाज लगाया जा सकता है। यह संघर्ष तुलसी की ही याद दिलाता है। संस्कृत भाषा के पण्डित तुलसीदास को भी लोकभाषा में अभिव्यक्ति के खतरे उठाने पड़े थे। इसीलिए, नागार्जुन के यहाँ तात्कालिकता और क्लासिकी के दो छोर दिखाई देते हैं। नागार्जुन की कविता का लोक–राग है जो अपने को गला कर ही उत्पन्न होता है। त्रिलोचन इसी के लिए कहते हैं–'कविता तो एक जीवन को तोड़ कर सकल जीवन बनाती है और जो जीवन टूटता है वह कवि का है।'' इसीलिए वे कहते हैं–

'हिन्दी की कविता उनकी कविता है जिनकी
साँसों को आराम नहीं था, और जिन्होंने
सारा जीवन लगा दिया कल्मष को धोने
में समाज के, नहीं काम करने में घिन की''

प्रगतिशील कवियों में प्रमुख कवि मुक्तिबोध में भी जो आत्माभियोग और आत्मभर्त्सना के स्वर हैं वे भक्तिकालीन कविता और कवि तुलसीदास का ही स्मरण कराते हैं। यहां देखने लायक बात यह है कि सर्वाधिक विद्रोही माने जानेवाले इन प्रगतिशील कवियों ने परम्परा से तुलसी का ऋण स्वीकार किया है। इन कवियों में तुलसी की अनुगूंजें हैं। हमें ठहर कर इस पर विचार करना होगा कि आखिर वह कौन सा समीकरण है जो परम्परावादी तथा लांछित तुलसीदास को विद्रोह और प्रतिरोध की चेतना के कवियों से जोड़ता है।

तुलसीदास को लेकर सन 1950 के आसपास रांगेय राघव, यशपाल, शिवदान सिंह चौहान और रामविलास शर्मा के बीच जो गम्भीर बहसें हुयीं जिसमें बाद में राहुल सांकृत्यायन, प्रकाश चन्द्र गुप्त और भदन्त आनन्द कौशल्यायन भी इसके हिस्सेदार बने। मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, शीर्षक अपनी पुस्तक की भूमिका में रामविलास शर्मा ने लिखा है–'इस पुस्तक का सम्बन्ध उस विवाद से है जो समय–समय पर–विशेष रूप से 1950–53 में मार्क्सवादी लेखकों के बीच उठता रहा है।'' रामविलास जी लिखते हैं–'तुलसी की ऐतिहासिक सीमाओं की बात करके माफी माँगने की जरूरत नहीं है। जरूरत है तुलसी पर गर्व करने की, इस बात पर दृढ़ विश्वास करने की कि जिस जाति ने तुलसी को जन्म दिया है, वह अजेय है।''

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद नयी कविता का दौर आया और नेहरू प्रधानमंत्री बने। देश के विभाजन के साथ साम्प्रदायिक दंगे हुए और स्वाधीन भारत में रामराज्य के स्वप्नद्रष्टा गाँधी की हत्या कर दी गयी। प्रगतिशील इस आज़ादी को झूठी आज़ादी' की संज्ञा दे रहे थे। प्रगतिशील कवि नागार्जुन जहाँ रामराज में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है' कह कर कांग्रेस शासन की जन–विरोधी नीतियों पर अपना आक्रोश व्यक्त कर रहे थे, वहीं केदारनाथ अग्रवाल–'आग लगे इस रामराज में' कहकर जन–असन्तोष को अभिव्यक्ति दे रहे थे। नयी कविता के साथ ही मोहभंग की शुरूआत हो चुकी थी। मोहभंग और बीते द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की मनः स्थिति में नयी कविता फिर से मिथकों की ओर गयी। नरेश मेहता ने संशय की एक रात' और जगदीश गुप्त ने शम्बूक' के माध्यम से राम के मिथक का पुनर्पाठ किया। मिथकों के पुनर्पाठ की पुरानी परम्परा है। वाल्मीकि' भवभूति' तुलसी' निराला सब अलग–अलग ढंग से राम को देखते हैं। प्रश्न करना–सन्देह करना आधुनिक वृत्ति है। द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त साकेत' की रचना करते हुए प्रश्नांकित कर चुके थे–'राम तुम ईश्वर नहीं हो क्या'' प्रश्नों से परे

कोई नहीं। तुलसी ने अपने समय में राम को प्रश्नांकित किया था और आधुनिक कवि अपने समय में राम को प्रश्नांकित कर रहा था। इसीलिए, मैं बार–बार कहता हूँ कि भक्ति के सीमित दायरे में बंधे भक्त कवि तुलसीदास को हमारे आधुनिक हिन्दी कवियों और उनकी कविता ने आधुनिक और समकालीन बना दिया।

'शम्बूक' के माध्यम से जगदीश गुप्त रामराज्य को प्रश्नांकित करते हैं यह तुलसीदास का रामराज्य भी है और गाँधी का यूटोपिया भी। जगदीश गुप्त लिखते हैं–'जो व्यवस्था व्यक्ति के सत्कर्म को भी/मान ले अपराध/जो व्यवस्था फूल को खिलने न दे निर्बाध/जो व्यवस्था/वर्ग–सीमित स्वार्थ से हो ग्रस्त/वह विषम घातक व्यवस्था/शीघ्र ही हो अस्त।'' तुलसीदास ने रामराज्य में राम ने समता और स्वतंत्रता को मूल्य के रूप में स्वीकार किया था। उनके राम ने कहा था कि यदि मैं कुछ अनीति की बात करूँ तो निर्भय हो कर मुझे रोको। 'शम्बूक' में प्रश्न है–'''राम तुम राजा बने किस हेतु हो?/व्यष्टि और समष्टि मन के सेतु हो?/शूद्रघाती बने करके क्रोध?/क्या तुम्हारा यही समता बोध?'' नरेश मेहता ने अपनी मिथकीय कविता संशय की एक रात' में यह प्रश्न उठाया कि यदि आज का मानव राम जैसी विषम स्थितियों से घिर जाए तो वह क्या करेगा? यह वस्तुतः राम–रावण युद्ध के पूर्व की स्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता है। वे लिखते है–'राम की इस विवशता को/सोच सकते हो/अन्य क्यों प्रायश्चित करें मेरे लिए/दुःख भोगें/वनों में भटकें अकारण ही।'' लोकहित तुलसी का प्रदत्त प्रतिमान है। यहाँ भी जो संशय है वह लोकहित के कारण ही। संशय यही है कि मानव का अभीष्ट क्या है–युद्ध अथवा शान्ति? इस दौर के प्रमुख कवि केदारनाथ सिंह तुलसीदास का पाठ–पुनर्पाठ करते हुए परम्परा से कैसे ग्रहण करते हैं इसे उनकी कविता रक्त में खिला हुआ कमल' में देखें–

'मेरी हड्डियाँ
मेरी देह में छिपी बिजलियाँ हैं
मेरी देह
मेरे रक्त में खिला हुआ कमल
क्या आप विश्वास करेंगे
यह एक दिन अचानक
मुझे पता चला
जब मैं तुलसीदास को पढ़ रहा था।''

1960 तक आते–आते भारतीय समाज और राजनीति में कई बदलाव हुए। गांधी जी के ग्राम–स्वराज' और उनके सपनों का भारत' के साथ ही उनका अन्तिम आदमी' भी कहीं खो चुका था। धूमिल इन्हीं स्थितियों पर टिप्पणी करते हुए कह रहे थे कि–'उस मुहावरे को समझ गया हूं/जो आजादी और गांधी के नाम पर चल रहा है/जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम/बदल रहा है।'' 1961 तक जीवित निराला और 1964 तक जीवित मुक्तिबोध भी इस दौर में उपस्थित थे। निराला जहां शिशिर की शर्वरी/हिंस्र पशुओं भरी' देख रहे थे, वहीं मुक्तिबोध अन्धेरे में डोमा जी उस्ताद'और मार्शल लॉ के भयावह सन्ताप में, बोरा ओढ़े उस गांधी को देख रहे थे जिसने स्वतन्त्र भारत के लिए रामराज का सपना देखा था।

आजादी से आम जनता का मोहभंग हो चुका था। आजादी के कुछ वर्षों बाद का साहित्य मोहभंग का साहित्य है। गांधी की हत्या वास्तव में जनाकांक्षा की हत्या थी। गांधी के बाद भारतीय जनता के सपने बिखर गये। साठोत्तरी कविता में सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों के साथ–साथ विद्रोह और आक्रोश का स्वर ही प्रमुख है। मोहभंग की स्थिति ने इन युवा कवियों को विद्रोह की ओर उन्मुख किया जिसके परिणामस्वरूप उनके काव्य में सपाटबयानी, अस्वीकृति, कुंठा, हताशा, निराशा, अनास्था और व्यंग्य का स्वर व्यंजित होने लगा। स्वप्न–भंग के इस दौर में कलम ही बची थी जो आक्रोश को साहित्य में व्यक्त करते हुए किसी साहित्यिक के जीने का आखिरी सहारा थी। राजनीतिज्ञों ने मुझे' शीर्षक कविता में श्रीकान्त वर्मा कहते हैं–

''पूछो तो इसी के सहारे
जीता रहा
यही मेरी बैसाखी थी
इसी ने मुझसे बार बार कहा,
'हारिये ना हिम्मत बिसारिये ना राम।'
हिम्मत तो मैं कई बार हारा
मगर राम को मैंने
कभी नहीं बिसारा।
यही मेरी कलम
जो इस तरह मेरी है कि किसी और की
नहीं हो सकती
मुझे भवसागर पार करवाएगी
वैतरणी जैसे भी
हो, पार कर ही लूँगा।''

धूमिल और राजकमल चौधरी की कविताओं को देख कर तुलसीदास के मोहभंग की ही याद आती है। यह चकित कर देने वाला तथ्य है कि जैसे–जैसे तुलसीदास का अपने रामराज्य से मोहभंग होता है, वैसे–वैसे वे अकेले पड़ते जाते हैं और आत्मनिर्वासित होते जाते हैं, त्रिविध ताप और समाज की क्रूरता के आगे उनका विश्वास डिगता जाता है और रामचरित गायन का स्वर धीमा होता जाता है। विनय पत्रिका में तुलसी रामचरित को अपना विषय न बनाकर आत्मसंघर्ष, आत्मनिवेदन और आत्मनिर्वासन को विषय बना लेते हैं। मध्यकालीन दरबार में पहुँचायी जाने वाली काव्यात्मक अर्जियों में तथाकथित रामराज्य में पिस रहे आमजन की दीनता, उसके दुःखों की भयावह दुनिया है जिसमें मध्यकालीन सामन्तवाद का राक्षसी रूप है जो एक स्वप्नद्रष्टा की फैंटेसी से हमारे सामने खुलता है। यहाँ भय और त्रास का यथार्थ है। यहाँ एक आतंक है जिससे सारा का सारा यूटोपिया दरकता दिखाई देता है। तो यह तुलसीदास का मोहभंग ही था जब गहरी पीड़ा से गुजरकर तुलसी ने कहा रहा होगा–'तुलसी समाज असमंजस में रामराज'। अपने ही रचे सपनों के दरकने का एहसास गहरी चोट देता है।

1967 के नक्सलबाड़ी किसान उभार के बाद जब भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर क्रांतिकारी वाम राजनीति की विस्फोटक शुरुआत हुई तो सभी भारतीय भाषाओं का साहित्य इससे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से गहराई से प्रभावित हुआ। सत्तर का दशक लघु पत्रिका आन्दोलन और वाम–जनवादी साहित्यों के उत्कर्ष का काल था। नक्सलबाड़ी किसान उभार के बाद के दौर के सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य ने हिन्दी के उन कवियों को भी प्रभावित किया जो नक्सलबाड़ी के बाद अस्तित्व में आयी क्रान्तिकारी वाम राजनीति से सहमति नहीं रखते थे। हिन्दी भी वाम जनवादी कविता राजनीतिक बयानबाजी की बुरी तरह शिकार थी। समकालीन हिंदी कविता का प्रस्थान बिंदु यही माना जाता है। इस समय हिंदी कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से विभिन्न स्तरों पर स्वयं को अलगा रही थी। अलहदा होने का लक्षण कविता में साफ–साफ दिख रहा था। कवियों ने इसे कविता की मुख्यधारा में वापसी कहा। यह अलहदापन संवेदना, भाव, विचार, दर्शन एवं भाषा के स्तर पर झलक रहा था। क्योंकि पूर्व की कविता में विद्रोह, हर चीज का निषेध एवं मोहभंग का गुस्सा था। कवियों के समक्ष कोई बड़ा लक्ष्य नहीं दिखायी पड़ रहा था। दिशाहीनता के शिकार ये कवि कविता को प्रभावी बनाने के लिये गोला, बारूद, बंदूक, क्रांति, गुरिल्ला युद्ध जैसे शब्दों को ठूंस रहे थे। कविता छद्म भावों एवं कृत्रिम शब्दों के चारों ओर चक्कर काट रही थी। लेकिन अस्सी के दशक तक आते आते स्थिति में परिवर्तन आया। कविता वस्तुस्थिति से साक्षात्कार करती दिखाई पड़ती है।

समकालीन हिंदी कविता पूर्व की कविता का सहज एवं स्वाभाविक विकास है। इसी समय कई युवा कवि अपनी उर्वर प्रतिभा के साथ उभर कर आए। इन कवियों के पास स्पष्ट दृष्टिकोण एवं नयी दिशा थी। यही कारण है कि इनकी कविताओं में उलझे हुए न तो बिंब मिलते हैं और न भावबोध के स्तर पर कोई क्लिष्टता। इन कवियों में सबसे बड़ी विशेषता जो नजर आती है वह है विनम्रता। समकालीन कविता कबीर–तुलसी–निराला–त्रिलोचन–केदार–नागार्जुन से गहरे जुड़ी। तुलसी ने तो अकाल के समय में कहा था–'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, भलि,' मगर हमारे समय में तो देश के गोदामों में खाद्यान्न सड़ रहा है। मनमानी और जनविरोधी नीतियों से किसान आत्महत्या कर रहे हैं। इस आत्महत्या को अब कहाँ जोंडू' शीर्षक कविता में राजेश जोशी कहते हैं–''देश के बारे में लिखे गए हजारों निबन्धा में लिखा गया/पहला अमर वाक्य एक बार फिर लिखता हूँ/भारत एक कृषि प्रधान देश है/दुबारा उसे पढ़ने को जैसे ही आँखे झुकाता हूँ/तो लिखा हुआ पाता हूँ/कि पिछले कुछ बरसों में डेढ़ लाख से अधिक किसानों ने/आत्महत्या की है इस देश में।'' जैसा पूर्व में कहा जा चुका है कि किसान चेतना का विस्तार तुलसी का ही विस्तार है। राजेश जोशी की कविताओं का प्रतिरोध भी तुलसी की ही याद दिलाता है। हरीशचंद्र पाण्डेय की किसान और आत्महत्या' कविता देखें– उन्हें धर्मगुरुओं ने बताया था प्रवचनों में/आत्महत्या करने वाला सीधे नर्क जाता है/तब भी उन्होंने आत्महत्या की/क्या नर्क से भी बदतर हो गई थी उनकी खेती/वे क्यों करते आत्महत्या/जीवन उनके लिए उसी तरह काम्य था/जिस तरह मुमुक्षुओं के लिए मोक्ष/लोकाचार उनमें सदानीरा नदियों की तरह/प्रवहमान थे/उन्हीं के हलों के फाल से संस्कृति की लकीरें/खिंची चली आई थीं/उनका आत्म तो कपास की तरह उजार था/वे क्यों करते आत्महत्या/वे तो आत्मा को ही शरीर पर वसन की तरह/बरतते थे/कितना आसान है हत्या को आत्महत्या कहना/और दुर्नीति को नीति।''

समकालीन कविता प्रकृति और मनुष्य के शोषण के युग्म को बेपर्दा करते हुए अपना तीखा विरोध कर रही है। ऐसा करते हुए कविता इस पूरी बंजरता–वृद्धि के बरअक्स और उर्वर हो कर हमारे पास, हमारे साथ खड़ी होती है। आदिवासियों को खदेड़ कर उनके हिस्से के जल, जंगल, जमीन को पूँजीपतियों के हवाले किया जा रहा है जहाँ वे मुनाफा कमा सकें। निराला ने अपने समय में पहचाना था कि हमारी सभ्यता 'दगा की' सभ्यता है। हर कदम पर दगा है। पूँजी की गुलाम यह सभ्यता हम सबको नई गुलामी की ओर धकेल रही है जहाँ पहुँच कर समूचा लोकतंत्र अपने मायने खो देता है, देश निरर्थ हो कर शरणार्थी शिविर बन जाता है। यहीं अरूण कमल सवाल उठाते हैं कि–'कौन कहता है गुलामी खतम हो गयी/कौन कहता है यहाँ जनतन्त्र है/कहां है पृथ्वी पर वह देश।'' भूमण्डलीकरण के बाद कुण्ठा, घुटन, निराशा, अवसाद और पराजय–बोध से मुक्त होकर अपनी ताकत की फिर से पहचान कर रही ये कविताएं दुविधा से निकलने का उद्यम करती हुई अपने खोये आत्मविश्वास को अर्जित कर रही है। कवि का मानना है कि उत्सर्ग के बाद फिर नवजीवन और नई ताकत के साथ प्रतिरोध में खड़े होना है और इसके लिए फिर से परम्परा से प्राप्त कवियों तथा ग्रन्थों के पास जाना होगा–

'जब तुम हार जाओ
जब वापिस लौटो
वापिस उन्हीं जर्जर पोथियों पत्रों के पास
सुसुम धूप में फिर से ढूंढ़ो वही शब्द लुप्त
फिर से अपना ही वध करो
फिर से मस्तक को धड़ पर धरो
होने दो नष्ट यह बीज
फूटने दो नये दलपत्र।''

अपनी कविता को वे दीन की विनय–पत्रिका कहते हैं, जबकि वैसा दैन्य उनके यहां कहीं नहीं है। उनके हर कविता–संग्रह के आरम्भ में कवि तुलसीदास की कविता–पंक्तियां होती हैं–'विनय पत्रिका दीन की, आप ही बांचो/हिये हेरि तुलसी लिखी, सो सुभाय सही करि बहुरि पूछि; पांचो।'' जाहिर है अरुण कमल की विनय–पत्रिका की कविता संवेदना और सहृदयता से निर्मित होती है, इसीलिये शिल्प के प्रति अरुण कमल के यहाँ कोई सावधानी, सजगता या प्रयोग नहीं है, पर साधारण आदमी के सरल मन की तरल संवेदना है। इनके यहाँ बौद्धिक जटिलता नहीं है बल्कि संवेदनात्मक संश्लिष्टता है। इसीलिए शिल्प में बेहद सहज–सरल दिखती इनकी कविताएं हमारे समय की जटिलता के साथ भाव में उतनी ही संश्लिष्ट है और तुलसी की परम्परा का ही सहज विस्तार हैं।

समकालीन कविता में भाषा–शिल्प का सवाल भी बड़ा सवाल है। अलग–अलग बोलियों वाले कस्बों से आये हुए कवियों ने अपने नए अनुभवों और क्षेत्रीय बोली–बानी से हिन्दी कविता को समृद्ध किया है। मगर, कविता की भाषा क्या होगी, यह सवाल तो रह ही जाता है। हर कवि अपनी भाषा अर्जित करता है। मसलन केशव तिवारी अवधी–भाषी हैं। वे अपनी कविता में कहते हैं–'यह पहली बार मेरी जुबान पर/माई के दूध की तरह आयी है।/इसके आसपास मंडराती है मेरी संवेदना/जायसी तुलसी त्रिलोचन/की बानी है यह।'' इसी तरह पंकज चतुर्वेदी की एक कविता शिल्प रहित' की याद आती है–'शिल्प–रहित' इस कविता में पंकज कहते हैं–'तुलसीदास ने जब कहा/कभी मैं अपनी तरह रह सकूँगा/तो प्रश्न यही था/जीवन का शिल्प क्या हो?/कविता का शिल्प था/पर उसमें यह तकलीफ समाहित थी/कि जीवन का शिल्प नहीं था।''

हमारे समय में धर्म का बाजारीकरण हुआ है। कट्टरता–संकीर्णता और बढ़ी है। धर्म के नाम पर हिंसा की घटनाओं में इजाफा हुआ है। उधर रामचरितमानस' को बाबरी मस्जिद ध्वंस का कारण बताया जा रहा है। ऐसे में पंकज चतुर्वेदी की कविता देखी जा सकती है–

'रात भर चलता रहा
अखंड मानस पाठ
सवेरे यह बच रहा एहसास
किस विकट बेसुरेपन से
गाए गए तुलसीदास!''

यह कविता बताती है कि हमारे समय में कैसे तुलसी का महज कीर्तन हो रहा है, पाठ नहीं। जहां तुलसी के पाठ के दावे किये जा रहे हैं वहां कुपाठ है। बद्रीनारायण और बोधिसत्व जैसे कवियों के यहां भी तुलसी और उनकी परम्परा का ही विस्तार दिखायी देता है। बद्रीनारायण जब लिखते हैं–'हो सकता है/आपके पिछवाड़े/रची जा रही हो प्रतिरोध की कवितावली/और आपको पता तक न हो'' तो तुलसी की उसी कवितावली को स्मरण कर रहे होते हैं जिसे तुलसी अपने ही स्वप्नों के भंग होने पर उसी रामराज' के विरुद्ध रचा था।

अस्मितावादी विमर्शों के समय में तुलसी का पुनर्पाठ हुआ और ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि उन पर वर्णाश्रम धर्म समर्थक और स्त्री–विरोधी होने के आरोप लगते ही रहे हैं। चर्चित कवयित्री अनामिका की एक कविता है–'तुलसी का झोला'। देखें–'तुमने तो पा लिया था अब राम–रतन, इस रत्ना की याद आती क्यों?

'घन–घमंड' वाली चौपाई भी लिखते हुए
याद आई? नहीं आई?
घन–घमंड' वाली ही थी रात वह भी
जब मैं तुमसे झगड़ी थी!
कोई जाने या नहीं जाने, मैं जानती हूँ क्यों तुमने
'घमंड' की पटरी घन' से बैठाई!''

यह हमारे समय की विडम्बना ही है कि तुलसी को बड़ा कवि तो सब मानते हैं पर समकालीन कविता का बहुलांश उन्हें डिस ओन' भी करता है। लोग कबीर का तो वंशधर बताना चाहते हैं मगर, अपने को तुलसी से सम्बन्ध जोड़ने को तैयार ही नहीं। जबकि हम चाहें या न चाहें हमारी अस्थियों में पूर्वजों का वास होता है। हम कितना ही बच लें किन्तु हमारी डी–एन–ए–रिपोर्ट बता देती है कि हमारा रक्त–सम्बन्ध किससे है। समकालीन कविता के डी–एन–ए– में कबीर–तुलसी–निराला–मुक्तिबोध–केदार–नागार्जुन आदि कवि शामिल हैं। अभी हाल ही में कुमार अम्बुज ने तुलसी की अलग–अलग चौपाइयों से तुलसी की एक प्रेम–कविता की निर्मिति और प्रस्तुति की है। तो, हमारे रक्त में तुलसी के प्रेम की लाल रक्त कणिकाएं भी हैं और कबीर के प्रतिरोध की श्वेत रक्त कणिकाएं भी।

सन्दर्भ

1. टी.एस.इलियटः पाष्चात्य काव्यषास्त्र, तारकनाथ बाली, मेकमिलन, पृ. सं. 238
2. रामनरेष त्रिपाठीः विष्ववेदना पृष्ठ सं. 5
3. अज्ञेयः स्मृतिलेखा, पृष्ठ सं. 63
4. दूधनाथ सिंहः आत्महन्ता आस्था, पृष्ठ सं. 263
5. अरूण कमल अपने हर कविता संग्रह के आरम्भ में तुलसी की इन पंक्तियों को उद्धृत करते हैं।